

# पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक, अधिकार १ लंदन हॉल में, ता. ०२-०७-१९८२, प्रवचन नं :- १

झवेरचंदभाई द्वारा परिचय - १३ मिनट

पू. लालचंदभाई: यह एक मोक्षमार्ग प्रकाशक नामक शास्त्र है। आज से लगभग दो सौ तीस वर्ष पहले जयपुर में एक गृहस्थ ज्ञानी हुए जिनका नाम पूरे समाज में प्रसिद्ध है, आचार्यकल्प टोडरमलजी साहब। उन्होंने मोक्षमार्ग प्रकाशक नामक एक शास्त्र की रचना की है। उसमें शुरुआत में पंचपरमेष्ठी का क्या स्वरूप है वह प्रथम हमें अभी लेना है।

पूज्य गुरुदेव इस युग के एक योगी पुरुष हुए। जब धर्म का स्वरूप लगभग लुप्त हो चुका था, सच्चे धर्म का स्वरूप क्या है वह जीव जानते नहीं थे, केवल मात्र क्रियाकांड में रचे-पचे थे; और उससे थोड़ा आगे बढ़ते तो शुभभाव करने से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है ऐसा मानते थे। वह मान्यता अनादिकाल से जीव को थी। वही संस्कार अनादिकाल के होने से जहाँ भी सुनने को मिले कि कषाय की मंदता, थोड़ा पुण्य करें तो हमें लाभ होगा, मोक्ष मिलेगा - यों इत्यादि अनेक प्रकार की जो बंध की क्रिया, उसे मोक्ष की क्रिया मानकर जगत के जीव उसमें रचे-पचे थे। उनका जन्म हुआ। जन्म के बाद एक जबरदस्त क्रांति पूरे भारत के अंदर, देश-विदेश में जागी।

जन्म से जैन में जन्में हों उनको णमोकार मंत्र तो शुरुआत से ही होता ही है। पंचपरमेष्ठी की भक्ति का राग वह तो शुरुआत से ही था और होता है। किन्तु णमोकार मंत्र के अलावा उन्होंने एक भेदविज्ञान का महामंत्र दिया कि जिस भेदविज्ञान के द्वारा देहादि से और पुण्य और पाप के परिणाम से भी आत्मा भिन्न है, ऐसे शुद्धात्मा का अनुभव गृहस्थ अवस्था में भी हो सकता है। गृहस्थ अवस्था में मोह का अभाव हो जाता है लेकिन राग और द्वेष रह जाता है। यह एक मार्मिक बात है। मोह का नाश गृहस्थ अवस्था में होता है; सम्यग्दर्शन-आत्मदर्शन प्रकट होने पर मिथ्यात्व का अभाव होता है। ममत्वभाव का अभाव होता है लेकिन साथ ही साथ (अर्थात्) तुरंत ही राग और द्वेष का नाश नहीं होता। उस राग और द्वेष के नाश का उपाय चारित्र है। मोह के नाश का उपाय सम्यग्दर्शन है। ऐसी धर्म की शुरुआत गृहस्थ अवस्था में कैसे हो उसका स्पष्टीकरण भेदविज्ञान के मंत्र द्वारा किया।

सामान्य रीति से धर्म शब्द एक ऐसा आकर्षक शब्द है कि जहाँ धर्म का नाम पड़ा वहाँ जगत के जीवों को वह धर्म सुनने की जिज्ञासा होती है, धर्म शब्द सुनते ही धर्म करने की जिज्ञासा होती है। यह एक धर्म शब्द ऐसा आकर्षक है कि फिर उसका यथार्थ स्वरूप क्या है वह समझा हो या न समझा हो किन्तु धर्म शब्द के ऊपर उसका हृदय कोमल हो जाता है। धर्म शब्द ऐसा है कि उसका हृदय कोमल हो जाता है, उसकी कषायें मंद हो जाती हैं। इस प्रकार धर्म शब्द एक आकर्षक (शब्द) है।

परंतु धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है, धर्म का शब्दार्थ क्या है, और धर्म का भावार्थ क्या है वह जगत के जीव जानते नहीं थे तो उन्होंने धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है वह उन्होंने समझाया, सुनाया। और हजारों लाखों मुमुक्षुओं ने भी उस बात को अपनाया। तो इस अवसर पर मैं पूज्य गुरुदेव का, अनंत-अनंत उपकार हमारे ऊपर है उस उपकार का बदला किसी भी संयोगों में किसी भी तरह से हम चुका सकें ऐसा नहीं है।

यतकिंचित् इतना भाव अवश्य आता है, कि उन्होंने जो भेदविज्ञान का मंत्र दिया उस भेदविज्ञान के मंत्र की साधना प्रत्येक जीव करे और उस मंत्र की साधना से आत्मा के दर्शन हों - उस प्रकार का कहने का-प्रचार का भाव, प्रभावना का भाव लायक जीवों को सहज आता है। स्वयं को जिस मार्ग से लाभ हुआ हो वह मार्ग दूसरे जीव प्राप्त करें ऐसी करुणा का भाव भी होता है। तो पूज्य गुरुदेव ने हमारे ऊपर ऐसा अनंत उपकार किया है, कि धर्म का सच्चा स्वरूप क्या है वह समझाया। धर्म शब्द का शब्दार्थ ऐसा है कि **वत्युसहावो धम्मो** (कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ४७६ अन्वयार्थ) वस्तु का जो स्वभाव है उसे धर्म कहते हैं।

जैसे कि, पहले हम एक दृष्टान्तरूप से लेवें धर्म का स्वरूप समझने के लिए, कि शक्कर शब्द है उसका जो स्वभाव है वह मिठास स्वभाव है, मीठा स्वभाव है। उस शक्कर का जो मिठास स्वभाव है इसलिये वह उसका धर्म है। तो शक्कर का धर्म क्या? धर्म अर्थात् स्वभाव। कि मिठास है वह शक्कर का स्वभाव है इसलिए वह शक्कर का धर्म है। सोना है वह पीला है। तो पीलापन है वह सोने का स्वभाव होने से उसे धर्म कहते हैं। स्वभाव को धर्म कहते हैं, विभाव को धर्म नहीं कहते। तो दूध है वह जब तक अच्छा रहे तब तक वह अपने स्वभाव में है; लेकिन बिगड़ जाय तो वह दूध काम नहीं आता। ऐसे ही प्रत्येक पदार्थ का अपना जो स्वभाव है उस स्वभावभाव को धर्म कहने में आता है।

ये तो दृष्टान्त हुए। ऐसे ही यह आत्मा एक वस्तु है - पदार्थ। उस आत्मा का स्वभाव क्या है? वह जो स्वभाव होता है उसे धर्म कहने में आता है। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध जितने परिणाम हैं उन परिणाम का नाम धर्म नहीं है, क्योंकि स्वभाव नहीं है इसलिए धर्म नहीं है। आत्मा का स्वभाव, ज्ञाता-दृष्टा वह आत्मा का स्वभाव है। जानना और देखना वह आत्मा का स्वभाव है। अब जानना और देखना वह आत्मा का स्वभाव है, तो ऐसा तर्क उठता है कि इन्द्रियज्ञान के द्वारा अनादिकाल से आत्मा पर को जानता आया है। तो यदि जानना मात्र उसका स्वभाव हो तो वह तो अनादिकाल से पर को जानता आया है, इसलिए उसे भी स्वभाव क्यों न कहा जाये - ऐसा प्रश्न उठता है।

उसका उत्तर आचार्य भगवंत यह फरमाते हैं कि जानना स्वभाव है वह तो ठीक ही है लेकिन जिसको जानने पर आनंद आये तब उसे स्वभाव कहने में आता है। तो इन्द्रियज्ञान द्वारा पर को जानने से आत्मा को आत्मिक आनंद का स्वाद नहीं आता। अतः वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना है। क्योंकि अपने शुद्धात्मा को अपना ज्ञान जब जानता है तब उसे अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है और दुःख का नाश हो जाता है। इसलिए आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के वीतरागी परिणाम प्रकट होते हैं, वे आत्मा का स्वभाव होने के कारण उन्हें धर्म कहने में आता है। किन्तु पुण्य और पाप की जो वृत्ति उत्पन्न होती है, शुभ और

अशुभभाव - क्षण में अशुभ और क्षण में शुभ, कषाय की तीव्रता और कषाय की मंदता के परिणाम जो विकृतभाव जीव की दशा में-हालत में होते हैं, वह वस्तु का स्वभाव नहीं है इसलिए वह धर्म नहीं है। क्योंकि उसमें आत्मा को आकुलता अर्थात् दुःख का वेदन होता है। क्योंकि वे सब पराश्रित विभावभाव हैं। उन विभावभावों से भिन्न आत्मा है, उसे दृष्टि में लेकर जब ज्ञान प्रकट होता है तब उसे आत्मा के दर्शन के समय आनंद का अनुभव होता है; ऐसे आत्मा के वीतरागी परिणाम जीव प्रकट करे तब उसे स्वभाव कहने में आता है और उस स्वभाव का नाम धर्म है। यह धर्म की व्याख्या है।

धर्म की व्याख्या सीधी है। **वत्युसहावो धम्मो-** वस्तु का जो स्वभाव हो उसे धर्म कहते हैं। उससे जो विरुद्ध हो तो उसे धर्म नहीं कहते। जैसे कि पानी का स्वभाव शीतल है तो उसकी अवस्था में भी शीतलता हो तो वह पानी का स्वभाव है और स्वभाव होने से धर्म कहलाता है। किन्तु वह पानी अपनी योग्यता और अग्नि का निमित्त पाकर जो पानी की अवस्था उष्ण होती है वह पानी का स्वभाव नहीं है। स्वभाव न होने के कारण वह उसकी विकृत विभाव दशा है। अतः वह पानी का धर्म नहीं वरन पानी का अधर्म भाव है। पानी की उष्णता हुई वह पानी का स्वभाव नहीं है। पानी के शीतल स्वभाव से विरुद्ध भाव है। इसलिये उसे स्वभाव नहीं कहते। वह स्वभाव से विरुद्ध है इसलिए उसे धर्म नहीं कहते। धर्म नहीं कहते अर्थात् पानी का वह धर्म नहीं है अपितु पानी का अधर्म हो गया। यह दृष्टांत। दृष्टांत तो समझ में आये ऐसा है।

ऐसे ही यह आत्मा है वह अनादिकाल से अपने स्वभाव को भूलकर देहादि परपदार्थ मेरे हैं ऐसी ममता करता है। और पुण्य और पाप के जो परिणाम होते हैं उनको भी अपना मानता है, वह उसकी एक विपरीत मान्यता है। वह ममत्वभाव है वह आत्मा के स्वभाव से विरुद्धभाव, विकृतभाव, दुःखदायकभाव है। इसलिए उसे स्वभाव न होने के कारण, विभाव होने के कारण अधर्म कहने में आता है। धर्म से विरुद्ध परिणाम उसका नाम अधर्म। पानी की शीतलता उसका स्वभाव है इसलिए पानी का धर्म कहलाता है। लेकिन वह शीतल पानी अवस्था में गर्म हुआ, उष्ण हुआ तो पानी ने अपने धर्म को छोड़ दिया है। पानी ने अपने शीतल स्वभाव को छोड़ा और उष्ण अवस्था हुई तो उस पानी ने अपने स्वभाव को छोड़ा। तो स्वभाव से विरुद्ध उष्णता हुई तो वह अधर्म दशा है। अर्थात् पानी का स्वभाव न होने के कारण विकृत अवस्था को अधर्म कहने में आता है। धर्म नहीं। धर्म से विरुद्ध, स्वभाव से विरुद्ध।

ऐसे ही यह आत्मा है उसका स्वभाव, मूल स्वभाव अपने ज्ञान द्वारा अपने शुद्धात्मा को पुण्य-पाप के परिणाम से भिन्न, देहादि से भिन्न अंतर्मुख होकर अपनी आत्मा को जानना, अनुभव करना, उसका लक्ष करना और उसमें जो आत्मा का अनुभव होता है उस अनुभव दशा में अतीन्द्रिय आनंद आता है वह आत्मा का स्वभाव है। स्वभाव होने के कारण उसे धर्म कहने में आता है अथवा उसे मोक्ष का मार्ग कहने में आता है। इस मोक्षमार्ग प्रकाशक की हमें शुरुआत करनी है उसकी संक्षिप्त थोड़ी व्याख्या धर्म का क्या स्वरूप है? धर्म-धर्म तो सब कहते हैं और करते हैं; लेकिन वास्तविक धर्म का क्या स्वरूप है वह सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा, तीर्थकर परमात्मा हुए उनके द्वारा उपदेशित मार्ग एवं संतो ने अनुभव करके जो शास्त्र लिखे हैं उनमें से यह एक टोडरमलजी साहब का शास्त्र है। इसका हमें

अध्ययन करना है। पेज दूसरा।

**अथ, श्री मोक्षमार्गप्रकाशक नामक शास्त्रका उदय होता है।** अर्थात् इस ग्रंथ की शुरुआत होती है। **वहाँ** (प्रथम ग्रंथकर्ता) **मंगलाचरण करते हैं।** देखो शब्द पड़ा है मोक्षमार्ग प्रकाशक। मोक्ष का मार्ग अर्थात् सुख का मार्ग। जगत के जीव शब्द से भड़क जाते हैं लेकिन शब्द से भड़कने जैसा नहीं है। मोक्षमार्ग। मोक्ष अर्थात् छूटने का मार्ग। मोक्ष अर्थात् छूटना। दुःख से छूटना ऐसे जो आत्मा के परिणाम उसे परमात्मा मोक्षमार्ग कहते हैं। नास्ति से। अस्ति से मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनंद की प्राप्ति। सुख की प्राप्ति, पूर्ण आनंद की प्राप्ति उसे परमात्मा मोक्ष कहते हैं। अब पूर्ण आनंद की जो प्राप्ति होती है उसका नाम मोक्ष। और उसका जो कारण, मोक्ष का मार्ग अर्थात् **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि** **मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) वह कैसे प्राप्त हो उसके लिए इस शास्त्र की मैं रचना करता हूँ। उसमें शिष्टाचार ऐसा है कि शास्त्र की रचना (करने) में मंगलाचरण किया जाता है। पंचपरमेष्ठी को नमस्कार, मंगलाचरण करते हैं प्रथम। वहाँ

**णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।**

**णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहणं ॥**

**यह प्राकृतभाषामय नमस्कार मंत्र है।** यह नमस्कार मंत्र जो कहा वह प्राकृत भाषामय है। **सो महामंगलस्वरूप है।** बाहर की आवाज आती है।

मुमुक्षुः हाँ, बाहर की आवाज सुनाई दे रही है।

पू. लालचंदभाईः **अरिहंतों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार, लोक में समस्त साधुओं को नमस्कार। इस प्रकार इसमें नमस्कार किया, इसलिए इसका नाम नमस्कारमंत्र है।**

**अब, यहाँ जिनको नमस्कार किया,** पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया जाता है। जिनको हम सुबह, दोपहर, शाम वंदन करते हैं तो उनका स्वरूप क्या है वह पहले ख्याल में लेने जैसा है। अन्यथा तो मात्र जैसे तोता राम-राम बोलता है ऐसा हो जाता है। तो पंचपरमेष्ठी का सच्चा स्वरूप क्या है यह पहली नींव की बात है। जैनदर्शन में वह पहले हम सबको समझने जैसा है।

**अब, यहाँ जिनको नमस्कार किया, उनके स्वरूप का चिंतन करते हैं:- क्योंकि स्वरूप के परिज्ञान बिना,** वे पंचपरमेष्ठी कौन हैं? उनके गुण प्रकट हुए वे क्या हैं? उनको गुण कैसे प्रकट हुए? हम किसलिए नमस्कार करते हैं? कि गुण ग्रहण करने के लिए नमस्कार करते हैं। तो उनको कौन से गुण प्रकट हुए वह पहले समझना चाहिये।

**अब, यहाँ जिनको नमस्कार किया, उनके स्वरूप का चिंतन करते हैं:- क्योंकि स्वरूप के परिज्ञान बिना यह ख्याल में नहीं आता कि मैं किसे नमस्कार करता हूँ? और स्वरूप समझे बिना उत्तम फल की प्राप्ति भी कहाँ से हो?**

हम जिनको नमस्कार करते हैं उनका स्वरूप पहले समझने जैसा है ऐसा पंडितजी फरमाते हैं। **वहाँ प्रथम अरिहंतों के स्वरूप का विचार करते हैं:-** पंचपरमेष्ठी में वास्तव में ऊँची में ऊँची पदवी तो सिद्ध परमात्मा की है। किन्तु उन सिद्ध परमात्मा को प्रथम नमस्कार न करके प्रथम अरिहंत

परमात्मा को नमस्कार करने में आता है। उसका कारण यह है कि सिद्ध परमात्मा की वाणी नहीं होती। और अरिहंत परमात्मा तीर्थकर भगवान की वाणी होती है। तो उनकी वाणी द्वारा सिद्ध परमात्मा का क्या स्वरूप और अरिहंत का क्या स्वरूप, आचार्य-उपाध्याय-साधु का क्या स्वरूप है वह उनकी वाणी द्वारा हमें प्राप्त होता है।

इसलिए हमारे उपकारी प्रथम उत्कृष्ट उपकारी यदि हों तो वे अरिहंत परमात्मा हैं। क्योंकि उनकी दिव्यध्वनि द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का स्वरूप क्या है वह वाणी में आता है। ओंकार ध्वनि छूटती है। जैसे हम क्रम-क्रम से बोलते हैं ऐसी उनकी भाषा नहीं होती। सम्पूर्ण देह में से कम्पन उठता है और उसमें ओंकार ध्वनि छूटती है, ॐ... उसमें सभी जीव अपनी-अपनी योग्यतानुसार उस वाणी का अर्थ समझ सकते हैं। ऐसा ही कोई अतिशय रहा हुआ है परमात्मा का। तो प्रथम में प्रथम हमारे मूल उपकारी सर्वज्ञ परमात्मा हैं। तत्पश्चात् आचार्य भगवंत उपकारी हैं और फिर हमारे गुरुदेव, हमारे ऊपर उपकार किया पूरा स्वरूप समझाकर।

मैं तो यहाँ मात्र जो गुरुदेव के पास से मैं जितना समझ सका हूँ वह मेरी यथाशक्ति अनुसार उनका ही कहा हुआ मैं यहाँ कहने आया हूँ। मैं अपने घर की बात कुछ नहीं कहूँगा। मुझे जितना उनके पास से मिला है, ग्रहण किया है, उनका संदेश देने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।

नैरोबी में तो गुरुदेव पधारे थे। किन्तु लंदन भी कदाचित् प्रसंग पड़ता तो उनका यहाँ लंदन आने का भी भाव था। लेकिन कोई योग नहीं हुआ। यह तो योगानुयोग सब होता है। कहीं इच्छा के अनुसार किसी जगत के पदार्थ का परिणमन नहीं बनता। लेकिन वे बहुत खुशी जताते थे व्याख्यान में प्रायः। मैंने प्रत्यक्ष सुना था कि लंदन में भी अभी प्रेमचंदभाई नामक बहुत गंभीर और तत्त्व के रसिक सुंदर जीव हैं और वे वांचन करते हैं। अर्थात् यहाँ उनका वांचन चलता था, उसमें भी उन्हें खूब प्रमोद था। क्योंकि ज्ञानियों को दूसरा कुछ नहीं चाहिये। मात्र तत्त्व प्रचार हो, तत्त्व समझें और जगत के जीव इस दुःख से छूटें और शाश्वत स्वाधीन सुख कैसे प्राप्त हो ऐसी निष्कारण करुणा उनको होती है। वे प्रशंसा करते हों उसके पीछे भी बहुत रहस्य होता है। वह रहस्य इतना ही कि इस तत्त्व का कोई जीव प्रचार करे तो दूसरे जीव समझें। क्योंकि इस भारत के अंदर तो वह परंपरा अनादि से चालू है। तीर्थकरों का जन्म होता है वहाँ, वाणी छूटती है और भारत में तो धर्म की परंपरा चालू ही है।

लेकिन यह तो बहुत दूर का देश लगभग अनार्य जैसा। यहाँ तो कोई मंदिर भी नहीं, कोई धर्म का प्रचार नहीं, कोई जैन की बस्ती नहीं। यह तो अफ्रीका से थोड़े भाई यहाँ आये आप सब और यह वांचन चलता है। और यहाँ बुलाने का भी प्रसंग आया। मैं भी कुदरती यहाँ आया और यह सब योग हुआ है। वास्तव में तो अपने जीवन में करने जैसा हो तो यह कि अपना सच्चा स्वरूप क्या है वह समझने जैसा है। **जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनंत** (आत्मसिद्धि शास्त्र, गाथा १) जगत के जीव ने अनंत दुःख पाया (और) चार गति और चौरासी लाख योनि में भटकता है। उसका मूल कारण यह है कि अपना सच्चा स्वरूप क्या, original (असली) स्वरूप क्या है वह जीव समझा नहीं है। या तो देह को जीव मानता है, या जीव को रागी मानता है, या जीव को इन्द्रियज्ञान वाला मानता है, या जीव है वह पैसेवाला, या मनुष्य सो जीव, नारकी सो जीव, एकेन्द्रिय सो जीव, दो इन्द्रिय सो जीव, इसप्रकार

जीव के स्वांग को जीव मान बैठा है। परंतु स्वांग से भिन्न आत्मा अंदर में कौन है - चैतन्य जलहल ज्योति, ज्ञान और आनंद की मूर्ति, उसने एक समयमात्र अंतर्मुख - सन्मुख होकर आत्मा का अनुभव किया नहीं।

वह आत्मा का अनुभव प्रथम में प्रथम करने जैसा है। धर्म की शुरुआत ही शुद्धात्मा के अनुभव से होती है, वृद्धि भी अनुभव से होती है और पूर्णता भी अनुभव से होती है। **एक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ** (आत्मसिद्धि शास्त्र, गाथा ३६), परमार्थ मोक्ष का मार्ग, सुख का मार्ग तो तीनोंकाल एक ही होता है - कि पुण्य-पाप से भिन्न अपना जो शुद्धात्मा है ज्ञानमय, उस ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान करके उसमें लक्ष करके स्थिर होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। मोक्ष का मार्ग अर्थात् सुख का मार्ग, स्वाधीन। बिलकुल किंचित् मात्र पराधीनता नहीं। कि कोई आशीर्वाद दे तब हम सुखी होंगे यह बात १००% झूठी है। किसी के आशीर्वाद से कोई सुखी नहीं होता। और किसी के श्राप से कोई दुःखी नहीं होता। मात्र केवल अपने परिणाम से जीव सुखी-दुःखी हो रहा है। अज्ञान से दुःख और आत्मज्ञान से सुख। दूसरे बाह्य के सब निमित्तमात्र के कथन हैं।

वस्तुतः वास्तविकता तो (यह है कि) अपने जिस प्रकार के जीव परिणाम करता है उसका फल वर्तमान में भोगता है और निमित्तपने बाद में भोगता है। वरना वास्तव में तो जिस समय जिस प्रकार का परिणाम जीव करता है उस ही प्रकार का उसे आकुलता का दुःख का वेदन उस ही समय आता है। परंतु एक निमित्तपने कर्म बंधते हैं और फिर उदय में आकर उसमें जुड़ता है तो वे (कर्म) दुःख के निमित्त कहलाते हैं। यदि कर्म के उदय में न जुड़े तो दुःख के निमित्त भी कहने में नहीं आते। वे तो निर्जरित हो जाते हैं।

निमित्त कब कहलाते हैं? कि उसमें जुड़े तो। लेकिन आत्मा में जुड़ जाये तो कर्म को निमित्त नहीं कहते किन्तु कर्म को ज्ञान का ज्ञेय कहते हैं। यहाँ हम बहुत सूक्ष्म बात तो अभी लेते नहीं हैं। तो भी थोड़ी-थोड़ी तो, कहनी तो पड़ेगी। क्योंकि आज नहीं सुनेंगे तो कब सुनेंगे? कि भई आज सूक्ष्म पड़ती है बारीक बात, तो फिर किस दिन सुनने का मौका (मिलेगा)? यह मनुष्यभव मिला तो थोड़ी-थोड़ी बात सूक्ष्म तो (सुननी ही पड़ेगी)। आत्मा सूक्ष्म है, आत्मा अरूपी है इसलिए थोड़ी देर यदि वह उपयोग लगाये तो समझ में आये ऐसा है। न समझ में आये ऐसा नहीं है। दृष्टांत तो देता हूँ कि मुंबई में बड़े मोटर स्पेयरपार्ट्स के व्यापारी होते हैं उनके यहाँ पांच हजार छोटी-बड़ी वस्तुएँ होती हैं, स्टॉक में। लेकिन दस वर्ष पहले कितने में खरीदी थी, उसके ऊपर कितना खर्चा, आज की लागत मूल्य, किस भाव में बेचें तो इतना मुनाफा हो - वह इस दिमाग के कम्प्यूटर के अंदर सारा हिसाब कर लेता है। उसका नंबर, उसकी made in (कहाँ की बनावट है वह) वह सब उसे पता होता है। इतनी वस्तुएँ उसे याद रहती हैं।

तो अब आत्मा के शाश्वत सुख के लिए छह द्रव्य का क्या स्वरूप है और नव तत्त्व का क्या स्वरूप है, और आत्मा का वास्तविक क्या स्वरूप है - इतना थोड़ा (उसे) याद क्यों न रहे? लड़कों का नाम याद रहता है, लड़कियों का नाम याद रहता है, जमाई का नाम याद रहता है, अरुणभाई! सब याद रहता है कि नहीं? हें? बाहर का कितना याद रहता है? याद रहता है ना? क्योंकि जिसमें जिसकी

रुचि है न उसका उसे याद रहता है। ये नौ तत्त्व के नाम याद नहीं रहते क्योंकि रुचि नहीं है। रुचि हो तो सब याद रहे। इसलिए करने जैसा हो तो इस भव में, भव का अंत करने जैसा है तो एक शुद्धात्मा का स्वरूप क्या है वह गुरुदेव ने हमें बताया है वह मार्ग त्वरित ही अपना लेने जैसा है। किंचित् भी प्रमाद करे बिना। आज होता हो तो कल करने जैसा नहीं है। और वह वस्तु स्वयं के पास है। धर्म कहीं बाहर से लेना नहीं है। कोई धर्म देता नहीं है। गुरुदेव भी धर्म दे नहीं सकते। धर्म मात्र बताया है। कि तुम्हारे आत्मा का स्वभाव ऐसा है उसका अवलंबन लो तो तुम्हें सम्यग्दर्शन आदि धर्म प्रकट होगा। धर्म बताते हैं - कहते हैं, लेकिन कोई धर्म दे नहीं सकता। यह देने-लेने की चीज नहीं है। कहने की चीज है लेकिन इसमें कुछ देने-लेने की चीज नहीं है।

कोई धर्म देवे (ऐसा है नहीं), तीर्थंकर परमात्मा भी धर्म नहीं दे सके। वे ऋषभदेव भगवान स्वयं, भरत चक्रवर्ती के पुत्र जो महावीर का जीव मारीचि, उसे भी धर्म दे नहीं सके। तो दूसरे को कौन धर्म दे सकता है? इसलिए वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा समझकर अंतर में चिंतवन-मनन करके शुद्धात्मा का ध्यान करने जैसा है। आजकल ध्यान का बहुत चलता है लेकिन ध्येय के स्पष्ट ज्ञान बिना ध्यान हो सकता ही नहीं। ध्यान किसका करना? सम्यग्दर्शन क्या है वह तो पता नहीं है, आत्मा का स्वरूप क्या है वह (तो) पता नहीं है और ध्यान करने बैठ जाता है वह तो आर्तध्यान, झूठा ध्यान है। उसमें कुछ हाथ में नहीं आता। अतः प्रथम में प्रथम जो रागादि से भिन्न, आठ कर्मों से न्यारा और देह से भी भिन्न ऐसा अपना शुद्धात्मा अंतर में विराजमान है, उस शुद्धात्मा को भेदज्ञान के मंत्र द्वारा अंतरसन्मुख होकर अपने स्वरूप को अंतर में निहार लेना और उसका लक्ष करके उसमें लीन होने का प्रयत्न करना उसे धर्म की शुरुआत कहने में आता है। तो यहाँ **अरिहंत का स्वरूप** पहले हम विचारते हैं।

**जो गृहस्थपना त्यागकर**, अरिहंत जो हुए वे गृहस्थ अवस्था छोड़कर, जंगल में जाकर दीक्षा अंगीकार करते हैं। पहले सम्यग्दर्शन गृहस्थ अवस्था में प्रकट होता है और जब चारित्र प्रकट होता है तब वह गृहस्थ अवस्था छूट जाती है। उस प्रकार के राग का उन्हें अभाव हो जाता है और स्वरूप में विशेष लीनता प्रकट होती है। तो **जो गृहस्थपना त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार करके, निजस्वभाव साधन द्वारा**- महासिद्धांत। कि गृहस्थ अवस्था छोड़कर जंगल में गए, अरिहंत परमात्मा होने से पूर्व साधु अवस्था हुई तो उसका साधन क्या? अरिहंत कैसे हुए? उसका (उत्तर) **निजस्वभाव साधन द्वारा**- महासिद्धांत। कि पांच महाव्रत के परिणाम किये वह साधन है? वह साधन नहीं है।

बारह प्रकार के अनशन आदि जो तप के विकल्प शुभभाव हैं वे साधन नहीं हैं। **निजस्वभाव साधन द्वारा**, निज - अपने शुद्धात्मा का ज्ञान और आनंद जो स्वभाव है उसके अंतरसन्मुख होकर उसमें एकाग्र होने पर जो ध्यान प्रकट - धर्मध्यान प्रकट हुआ उस साधन द्वारा। धर्मध्यान वीतरागी परिणाम है। और उस **साधन द्वारा चार घातिकर्मों का क्षय करके**, संयोगरूप से आठ प्रकार के कर्म हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय, ऐसे भगवान ने आठ कर्म कहे हैं। और इनमें चार घाति और चार अघाति। आत्मा के गुणों का घात होने में जो निमित्त होता है उसे परमात्मा घाति कर्म कहते हैं। और जिसमें मात्र संयोग की प्राप्ति होती है उसे अघाति कर्म कहने में आता है। तो यहाँ **चार घातिकर्मों का जड़ कर्मों का क्षय करके**, भाव कर्म का और जड़

कर्म का क्षय होता है आत्मा के आश्रय से। जब आत्मा आत्मा में लीन होता है तब भावकर्म का भी अभाव होता है और संयोगरूप से द्रव्यकर्म जो चार घाति हैं उनका भी अभाव हो जाता है। और उसके निमित्त से यहाँ जीव के परिणाम की योग्यता और कर्म का छूटना वह समकाल है। कर्म छूटते हैं इसलिए केवलज्ञान होता है ऐसा नहीं है। केवलज्ञान होता है तब प्रतिबंध कारण का सहज ही अभाव होता है। केवलज्ञानावरण कर्म का उदय उस समय होता नहीं है।

तो इतना ज्ञान कराया कि **चार घातिकर्मों का अभाव करके क्षय करके अनंतचतुष्टयरूप विराजमान हुए।** अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनन्तवीर्य। जैसे किसी पदार्थ का enlarge (विकास) होता है न enlarge, ऐसे इन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख के परिणाम का enlarge होने लगता है। उनका विकास होने लगता है। अंतरध्यान से विकास होते-होते जो अल्पज्ञान था वह पूर्ण हो जाता है। अल्प सुख प्रगट था वह पूर्ण सुख प्रगट हो जाता है। तो **अनंत चतुष्टयरूप विराजमान हुए; वहाँ अनंतज्ञान द्वारा तो अपने अनंत गुण-पर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यों को युगपत् विशेषपने से प्रत्यक्ष जानते हैं।** अब एक-एक की व्याख्या संक्षेप में करते हैं। अपना समय हो गया, नौ बजे का टाइम है न?

मुमुक्षु: पंद्रह मिनट और ले लीजिए।

पू. लालचंदभाई: भले सवा नौ, भले।

क्या फरमाते हैं ज्ञानी? कि पहले आत्मा बहिरात्मा होता है। फिर अंतरात्म दशा होती है और फिर परमात्म दशा होती है। ऐसे एक आत्मा की क्रम से तीन प्रकार की अवस्थायें होती हैं। जितने अरिहंत परमात्मा हुए वे पूर्व में बहिरात्मा थे, मिथ्यादृष्टि थे, अज्ञानी थे। वे भी अपनी स्वयं की योग्यता और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के समागम में आने पर उन्हें आत्मा का भान होता है, आत्मदर्शन होता है, सम्यग्दर्शन प्रकट होता है तब वहाँ से अंतरात्म दशा शुरू होती है। फिर देह को 'मेरा है' ऐसा ज्ञानी मानते नहीं हैं। कुटुंब-परिवार में रहने पर भी उनकी ममता छूट जाती है। राग रह जाता है।

राग और ममता में बड़ा फर्क है। राग है वह अल्प संसार का कारण है, अल्प दुःख का कारण है और मोह अर्थात् ममता है वह अनंत दुःख का कारण है। गृहस्थ अवस्था में... कोई फिर ऐसा समझे बिना ऐसी मजाक भी करते हैं कि यह धर्म अच्छा, व्यापार भी चालू रहे, दुकान पर भी जा सकें और धर्म की प्राप्ति भी होवे। खाना-पीना भी चालू रहे और धर्म भी चालू रहे। यह क्या नया (धर्म का मार्ग)? भाई यह नया नहीं है (यह तो) अनादि का मार्ग है कि गृहस्थ अवस्था में मोह अर्थात् ममता के परिणाम छूट जाते हैं।

जैसे कि तुम्हें एक दृष्टांत देता हूँ कि एक जीव सोमवार को अज्ञानी था, मिथ्यादृष्टि था, आत्मा की दृष्टि नहीं थी। किन्तु निरंतर स्वाध्याय, चिंतन, मनन, सत्समागम से उसे, सोमवार को अज्ञानी था और मंगलवार को सबेरे (आत्मा के) ध्यान में बैठने पर आत्मा के दर्शन हुए। मंगलवार को सम्यग्दृष्टि हुआ। देखना यह अंतर का फर्क कितना है उसकी बात चलती है। कि सोमवार को भी वह ऑफिस जाता था। अपनी घर की दुकान हो तो उस प्रकार से, सर्विस में हो तो उस प्रकार से। सोमवार को सब क्रिया चलती थी। मंगलवार को उसे आत्मदर्शन हुआ। तो मंगलवार को भी क्रियायें तो वही की वही



रही।

अब सम्यग्दर्शन हुआ इसलिए दुकान पर जाना नहीं है और व्यापार करना नहीं है और सब बंद कर देना है - ऐसा सम्यग्दर्शन की भूमिका में नहीं होता। चारित्र का जब स्टेज आता है तब वह स्थिति होती है। अब जो सोमवार को क्रिया चालू थी देह-मन-वाणी की, और अंदर में आहार और पानी की इच्छाएँ भी सोमवार को होती थी। आहार लेने की, पानी लेने की, पहनने की, ओढ़ने की, स्नान करने की इत्यादि सब सोमवार को क्रियायें थीं। वे देह, मन, वाणी की क्रिया तो उनसे हो रही थी। और वह सोमवार को ऐसा मानता था कि ये क्रियायें मेरे से हुई हैं। ऐसा सोमवार को मानता था। भाषा मैं बोल सकता हूँ, हाथ ऊँचा कर सकता हूँ ऐसा सोमवार को मानता था। वह क्रिया सोमवार को थी। बाहर की क्रिया। अब अंदर की क्रिया रागादि की जो सोमवार को हो रही थी, आहार की इच्छा, पानी की, वह भी सोमवार को थी। परंतु वह सोमवार को ऐसा मानता था कि यह राग मैंने किया और राग मेरा है। राग का राग करता था। राग में ममता करता था। पुण्य-पाप के परिणाम तो सोमवार को हो रहे थे लेकिन उनका वह मालिक बन गया था। कि ये पुण्य-पाप के परिणाम मेरे और उनसे मुझे लाभ होता है और यह मेरा कर्तव्य है। सोमवार को कर्ताबुद्धि थी।

मंगलवार को आत्मभान हुआ तो आहार और पानी की इच्छा भी हुई समय पर बिल्कुल। दुकान पर जाने की भी इच्छा हुई, वे पाप के परिणाम। दुकान पर जाना, व्यापार-रोजगार में जुड़ना वे पाप के परिणाम हैं। स्वाध्याय, चिंतवन, मनन, दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम वे पुण्य तत्त्व हैं। सोमवार को जो क्रिया होती थी वह ही मंगलवार को रही। तो फर्क क्या पड़ा? जगत के जीवों को यह एक बड़ा प्रश्न है। काम तो वह का वही हुआ करता है। पहले करता था और अब होता है - इतना फर्क पड़ा। पहले कर्ताबुद्धि थी तो मैं करता हूँ ऐसा मानता था। इवेरचंदभाई! शब्दों में फर्क है।

पहले मैं करता हूँ तो होता है ऐसा मानता था सोमवार को। मेरे से होता था। दुकान मेरे से चलती थी, मैंने कमाया तो मेरी बुद्धि से मैं कमाता था। दूसरे के पास बुद्धि नहीं थी इसलिए नहीं कमाता था वह बुद्धु था और मैं तो होशियार। अपनी होशियारी से कमाता था ऐसा सोमवार को था। (वह) कर्ताबुद्धि थी, परपदार्थ का स्वामी बनता था। मंगलवार को अंतर से उदास हो गया, कि इस जगत का कोई पदार्थ रजकण मेरा नहीं है और यह क्रिया मेरे से होती ही नहीं। देह-मन-वाणी की क्रिया मेरे से नहीं होती इतना तो नहीं लेकिन जो इच्छा उत्पन्न होती है कमाने-खाने-पीने-अर्थप्राप्ति की, वह इच्छा - पाप की इच्छा; वह होती है उसका मैं करनेवाला नहीं हूँ, उसका मैं जाननेवाला हूँ। सोमवार को करनेवाला बनता था मंगलवार को जाननेवाला हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु: साक्षी रहा।

पू. लालचंदभाई: साक्षी रहा, ज्ञाता हो गया। कर्ताबुद्धि छूट गई। यह मार्मिक बात (है)। गृहस्थ अवस्था में भव का अंत आ जाये ऐसी बात है। सब क्रियायें रह जाती हैं। जब तक उसकी उग्र पुरुषार्थ की भावना आत्मा के स्वभाव में स्थिर होने की जागती नहीं है तब तक गृहस्थ अवस्था में हजारों-लाखों वर्ष चौथे गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि रह सकता है। ८३ लाख पूर्व, करोड़ों अब्जो वर्ष ऋषभदेव भगवान गृहस्थ अवस्था में रहे। अब उनको पता था कि मैं तीर्थकर होनेवाला हूँ। और फिर भी किसी

को ऐसा प्रश्न होता है कि चारित्र क्यों अंगीकार नहीं किया? जंगल में क्यों नहीं गये? ऐसा किसी को प्रश्न होता है वह कर्ताबुद्धि का प्रश्न है।

संयोग होते (बदलते) रहते हैं। संयोग आते हैं और जाते हैं। उनका करनेवाला आत्मा नहीं है। जिसे ऐसा लगता है कि मैं करनेवाला हूँ वह अज्ञानी है और होता है उसका मैं जाननेवाला हूँ वह ज्ञानी है। बाहर की बात। इसीप्रकार अंदर में पुण्य-पाप के परिणाम होते हैं; उनका मैं मात्र जाननेवाला हूँ तो ज्ञानी (है); और पुण्य और पाप के परिणाम मैंने किये, मेरे से हुए, मैं करता हूँ (ऐसा माने) वह अज्ञानी है, उनका (पुण्य-पाप का) स्वामी बन जाता है। राग का - आस्रव का स्वामी बन जाता है। कर्ताबुद्धि, मालिकबुद्धि, स्वामी बन गया। कषाय का स्वामी बनता है आत्मा, वह अज्ञानी है। पुण्य-पाप के परिणाम कषाय हैं, उनकी जाति अकषाय नहीं है। एक तीव्र कषाय और मंद कषाय दोनों कषाय की जाति के हैं। वह कषाय का स्वामी बनता था, (वह) मंगलवार को कषाय का साक्षी हो गया, समाप्त!

ये भाव आते हैं परंतु ये मेरा स्वभाव नहीं है। क्योंकि स्वभाव दृष्टिगोचर हो गया कि मैं तो ज्ञाता-दृष्टा आत्मा हूँ। मेरे में पुण्य भी नहीं है और पाप भी नहीं है, मुझमें देह नहीं है, जड़कर्म मेरे में नहीं है। मेरे से भिन्न पृथक चीज है, जगत का पदार्थ है। उसका और मेरा कोई लेना-देना नहीं है। इसप्रकार एकत्वबुद्धि टूटी और एकत्वबुद्धि आत्मा में हुई, परिणाम आत्मा में एकत्व हुए तो पर से एकत्वबुद्धि छूट गई, वह ज्ञानी है और क्रम-क्रम से अल्पकाल में उसे पूर्णानंद की प्राप्ति - मोक्ष दशा प्रगट होती है। इसलिए गृहस्थ अवस्था में प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करने का उपदेश ज्ञानीजन देते हैं। और जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ उसे फिर अल्पकाल में चारित्र या तो इस भव में अथवा अगले भव में (होता है)। लेकिन चारित्र मतलब स्वरूप में रमणता, लीनता उसका नाम चारित्र है। ये कषाय की मंदता और पुण्य तत्त्व ये वास्तव में चारित्र नहीं है, अपितु चारित्र का मल और मैल है। ये परिणाम होते अवश्य हैं। साधक को शुभभाव आते अवश्य हैं - भगवान की पूजा के, यात्रा के विकल्प आते हैं, किसी को उपवास का भी विकल्प आता है, किसी को बाहर उस प्रकार की कषाय की मंदता का भाव आता है। आते तो हैं, लेकिन उनका वह स्वामी होता नहीं है, मालिक नहीं है। समाप्त!

मकान घर का हो उसमें फर्क और किराये का हो उसमें फर्क। मोहनभाई! फर्क होता है कि नहीं? कि यह घर मेरा है, ऐसा उसे लगता है। और किराये से रहता हो तो ये घर मेरा नहीं है, मैं तो किराएदार हूँ। हें? इसीप्रकार इस देह में स्थित आत्मा अभिमान करता है कि ये घर मेरा। देह कहो या घर कहो एक ही बात है। ये मेरा है। मेरा है ऐसा मानता है वह मरता है। देह में ममता करता है। **क्षण क्षण भयंकर भावमरण** मरता है। आहाहा! समय-समय अपने चैतन्य प्राण का घात होता है।

**सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुख जाता दूर है, लेश वह लक्ष में लहो, तू क्यों भयंकर भावमरण, प्रवाह में चकचूर है?** (राजपद, अमूल्य तत्त्वविचार)

उसे ऐसा लगता है कि लंदन जैसी जगह में कमाई बहुत अच्छी होती है। बड़ी अच्छी मोटरें और ये सब। आहाहा! बगीचा और बाग और कुटुंब और परिवार। आहा! भाई इसमें कोई सुख नहीं है। परपदार्थ में सुख कहाँ से हो? सुख तो आत्मा में है। जड़ के संयोग में कोई सुख नहीं है। कल्पना करता है कि मैं सुखी हूँ। परंतु ज्ञानी कहते हैं कि बहुत दुःखी है। बहुत दुःखी है। आत्मिक सुख का जिसमें

कण नहीं है। आहाहा!

पर के आश्रय से किंचित् मात्र सुख प्रकट नहीं होता। जहाँ सुख भरा है उसका जब अवलंबन करता है तब आत्मा के सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए यहाँ आचार्य भगवान पहले अरिहंत के स्वरूप का वर्णन करते हुए (कहते हैं कि) अरिहंत परमात्मा हुए उनको अनंतज्ञान प्रगट हो गया। अब उस अनंतज्ञान की क्या व्याख्या है वह कहते हैं। कि **वहाँ अनंतज्ञान द्वारा तो अपने अनंत गुण-पर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यों को युगपत् विशेषपने से प्रत्यक्ष जानते हैं**। अरिहंत भगवान को जब केवलज्ञान का विस्फोट होता है तब उस ज्ञान की अवस्था में स्वयं के द्रव्य-गुण-पर्याय और जगत के द्रव्य-गुण-पर्याय - भूत, भविष्य और वर्तमान तीनकाल तीनलोक के पदार्थों को समयमात्र में इच्छा बिना और उनके सन्मुख हुए बिना, आत्मसन्मुखता में रहते हुए वह लोकालोक जानने में आ जाता है। ऐसी एक केवलज्ञान की अचिन्त्य शक्ति प्रगट होती है केवली भगवान को। फिर अनंतदर्शन प्रगट होता है, अनंतवीर्य और अनंतसुख - तीन बोल बाकी हैं। समय हो गया। अब कल या परसों जो टाइम हो वो।